Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 10 | OCTOBER 2024

हिन्दी ग़ज़ल में बाजारवाद, पूंजीवाद और औद्योगिकरण

डॉ. भुवनेश कुमार परिहार [1]

[1] **सह आचार्य (हिन्दी), राजकीय कन्या महाविद्यालय, किशनपोल, जयपुर (राजस्थान).**

ABSTRACT:

वर्तमान दौर में व्यक्ति एवं समाज पर बाजारवाद, पूंजीवाद एवं औद्योगिकरण का स्पष्ट प्रभाव झलकता है। इस पूंजीवादी युग में पैसों को ही जीवन का साध्य मानने वाले मनुष्य के जीवन को विज्ञापन एवं बाजार ने खोखला बना दिया है। इस बाजारवाद ने मनुष्य को केवल खरीददार बना दिया है, वह अनचाही वस्तु या पदार्थ खरीदने को प्रेरित है। आज का मानव पूंजीवादी सभ्यता में फंसकर जीवन के वास्तविक सुख एवं आनन्द को भूलाकर भौतिक सुख-सुविधाओं की पीछे भाग रहा है। औद्योगिकरण ने मनुष्य के जीवन को मशीन बना दिया है जिसके कारण उसके जीवन में भाग-दौड़, घुटन, चिड़चिड़ापन है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों ने इनके कारण मानव जीवन पर आए प्रभाव को अपनी ग़ज़लों में सहजता एवं व्यंग्यात्मकता से अभिव्यक्त किया है।

KEYWORDS:

शोषण-उत्पीड़न, हर्ष-विषाद, दीनता-विवशता, आक्रोश, रोजगार, भ्रष्टाचार, शोषण, सांप्रदायिकतां, बाजारवादी संस्कृति, वैश्वीकरण, भ्रष्ट व्यवस्था, औद्योगिकरण, अनैतिकता, स्वार्थ एवं स्वकल्याण, संसद की गरिमा, वर्तमान चुनाव प्रक्रिया, मानवतावाद आदि।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
13th October 2024	15th October 2024

प्रस्तावना :

समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों ने आधुनिक अर्थ प्रधान युग में जीवन मूल्यों के निरन्तर ह्रास की स्थिति पर ग़ज़ल रचना की है। बाजारवाद के प्रभाव के कारण भौतिक सुखों के पीछे भागने वाला मनुष्य मानवतावाद एवं इंसानियत जैसे मानवीय मूल्यों को भूला चुका है। इन ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में बदलते जीवन मूल्य एवं उनके पतन की सहज अभिव्यक्ति के साथ इन मूल्यों को जीवन में स्वीकार करने की चेतना भी है। समसामयिक हिन्दी ग़ज़ल में मानवीय जीवन मूल्यों के ह्रास पर गहरी चिंता व्यक्त है। अर्थ को ही भगवान मानने वाले युग में मानवीय मूल्यों का कोई अर्थ नहीं रह गया है। इन ग़ज़लों में मानव के आर्थिक शोषण–उत्पीड़न, हर्ष–विषाद, दीनता–विवशता, आक्रोश एवं विद्रोह की बेबाक एवं सटीक अभिव्यक्ति है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने निम्न वर्ग, श्रमिक, मजदूर आदि के आर्थिक शोषण को व्यक्त करते हुए ग़ज़ल के माध्यम से विद्रोह एवं विरोध प्रकट कियज़्ं हिन्दी ग़ज़लकारों ने मनुष्य के आर्थिक शोषण एवं भ्रष्ट व्यवस्था का आक्रामकता से विरोध का स्वर अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्ति किया है। ये समाज में आर्थिक समानता के पक्षधर है। इन हिन्दी ग़ज़लों में शोषक वर्ग की नीतियों के साथ–साथ शोषित समाज की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण है। इस व्यवस्था एवं शोषण के खिलाफ क्रांति एवं बगावत की चेतना के साथ शोषणमुक्त समाज की स्थापना का प्रयास भी इन ग़ज़लों में व्यक्त है। बाजारवादी संस्कृति में मनुष्य से ज्यादा महत्व धन–दौलत का हो गया है। मनुष्य मानवीय मूल्यों को भूलाकर दौलत को ही धर्म मानने लगा है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने मनुष्य के जीवन का वास्तविक अर्थ समझाते हुए बाजारवाद के स्थान पर मानवतावाद की स्थापना का सार्थक प्रयास किया है। ग़ज़लकार दुष्यन्त कुमार ने मानव जीवन में बाजारवाद के प्रभाव के कारण आई मूल्यहीनता को अपनी ग़ज़लों में चित्रित किया। बदलते जीवन मूल्यों के इस दौर में अब ईमानदारी की दुकानें बंद हो गई हैं एवं तमाशबीन लोग लुट की दुकाने लगा रहे है –

''दुकानदार तो मेलें में लुट गए यारों
तमाशबीन दुकाने लगा के बैठ गए'' [1]

आज बाजारवाद ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला को काफी हद तक बदल दिया है। बाजार हमें सुविधाओं, आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो बाजारवाद हमारी जेबे खाली करवा रहा है। इससे मध्यमवर्गीय समाज खोखला हो गया है। ग़ज़लकार जहीर कुरैशी के अनुसार इस बाजारवाद को चलाने वाले राष्ट्रवाद एवं स्वदेशी के नाम पर बाजार को चला रहे है। इनकी यह व्यंग्यपूर्ण ग़ज़ल द्रष्टव्य है –

''इक्कीसवीं सदी के सपेरे है आधुनिक
नागिन को वश में करने के मंतर बदल गए
बाजारवाद आया तो बिकने की होड़ में
अनमोल वस्तुओं के भी तेवर बदल गए'' [2]

ग़ज़लकार राजेश रेडड़ी ने अपनी ग़ज़लों में इस अर्थकेन्द्री समाज एवं बाजारवाद के कारण मनुष्य की जिन्दगी बाजार के समान होने की विसंगति को सार्थक अभिव्यक्ति दी है। आज सम्पूर्ण विश्व एक बाजार के समान है। मनुष्य को क्या खाना है, क्या पहनना है एवं इनके अलावा जीवन जीना भी बाजार एवं विज्ञापन सीखा रहे है। इस बाजारवाद के प्रभाव के कारण घर, गाँव, शहर सब के सब बाजार ही हो गए है–

''कल तक जो घर थे, गाँव थे, कस्बे थे, शहर थे
सब देखते ही देखते बाजार हो गए''[3]

इन्होंने अर्थकेन्द्री समाज के मानव की प्रवृति पर भी निशाना साधा है –

''जानू क्यूँ मिट्टी के इस पुतलें का ध्यान
उम्र भर सोने के जेवर में रहा''[4]

इन्होंने समाज पर आए बाजारवाद के प्रभाव को व्यक्त करते हुए विज्ञापन से प्रेरित मानव समाज की प्रवृति का सटीक चित्रण किया। आजकल सौदागर काफिलों में आते है और संसार को बाजार बना देते है। वे विज्ञापनों के माध्यम से मनुष्य को प्रभावित कर गैर जरूरी चीजें खरीदने पर भी मजबूर कर देते है –

''काफिले लेके हर एक सिम्त चले सौदागर
सारे संसार को बाजार बनाकर छोड़ा
ईश्तहारों में जो थी गैर जरूरी चीजें
हमको उनका भी ख़रीदार बनाकर छोड़ा''[5]

वैश्वीकरण के इस दौर में बाजारवाद के प्रभाव से घर टूटकर दुकान बन रहे है। अब आम आदमी पैसों को लोभ में घरों को तोड़कर दुकान निर्मित कर रहे है। आम आदमी के जीवन में अंतहीन पीड़ाएँ है, उसकी संवेदनाओं के बादल नेत्रों से बरसते रहते है। ग़ज़लकार ज्ञान प्रकाश विवेक का यह शेर प्रस्तुत है –

मेरे मकान को तोड़ा दुकानदारों ने
उसे भी शहर की मंडी के साथ जोड़ दिया''[6]

वर्तमान युग में जब घर दुकान में तब्दील हो रहे हैं, तो ऐसी स्थिति को कोई कारोबार तो

कोई मजबूरी कहता है। ग़ज़लकार बालस्वरूप राही ने आम आदमी की इसी पीड़ा को स्वर दिया है। वे कहते है –

"अपना अपना माल सजायें सब बाजार में आ बैठे
कोई इसे कहे मजबूरी कोई कारोबार कहे।"[7]

ग़ज़लकार अदम गोंडवी ने अपनी ग़ज़लों में पूंजीवादी लोगों की बाजारवाद के नाम पर किये जाने वाले शोषण को बेनकाब किया है। वे कहते है कि ऐसे लोग जो राष्ट्रीयता का प्रचार करते हैं वह झूठा एवं दिखावी है। एक तरफ तो ऐसे लोग स्वयं को देश का सच्चा नागरिक एवं देशभक्त कहते है वहीं दूसरी और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बाजार में चीजों के दुगुने दाम कर देते है। इनके असली चेहरे को अदम जी हमारे सामने बेनकाब करते है –

"ये वन्दे मातरम् का गीत गाते है सुबह उठकर
मगर बाजार में चीज़ों का दुगुना दाम कर देंगे।"[8]

वर्तमान दौर में अमीर एवं गरीब दोनों में ही पैसों की होड़ है, ये लोग अर्थप्राप्ति के लिए जीवन के वास्तविक सुखों को भुला रहे है। पूंजी ही इनका सुख है। पूंजीवाद केवल विकसित देशों के हितों को प्राथमिकता देता है एवं विकासशील देशों की पूंजी को हड़पना चाहता है। इसके बुनियादी ढांचे में ही खराबी है। अदम गोंडवी जी का यह शेर देखिए –

"लगी है होड़ सी देखो अमीरी और गरीबी में,
ये पूँजीवाद के ढांचे की बुनियादी खराबी है।"[9]

अदम गोंडवी ने अपनी ग़ज़लों में औद्योगिकरण के कारण होने वाले मजदूरों के शोषण का वास्तविक चित्रण किया। यह शोषित मजदूर चिड़चिड़ेपन, घुटन, पीड़ा, दर्द, अभाव का शिकार है। इस औद्योगिकरण के कारण भौतिक संसाधनों का जो विस्तार हुआ, उसका उपयोग उच्च एवं मध्यम वर्ग ने ही किया। देश का आम आदमी तो इनको प्राप्त करने के चक्कर में समाप्त ही हो गया। उसकी पीड़ा व्यक्त ही हो नहीं पाती है –

"आज उसकी छटपटाहट व्यक्त हो पाती नहीं
दब गई है चीख़ मानव की मशीनी शोर से"[10]

इस औद्योगिकरण के संसार में मनुष्य मशीन के साथ काम करते करते स्वयं मशीन के समान हो गया है। वह श्रम से थककर चूर हो जाता है लेकिन पूंजीपतियों को उसकी समस्याओं से कोई वास्ता या लेना देना नही है। वे संवेदनहीन हो गए है। आम आदमी पीसता जा रहा है। ग़ज़लकार कुंअर बैचेन ने इंसान से मशीन मे तब्दील हो रहे मनुष्य का मार्मिक चित्रण किया है –

"पहले तो ये हाथ हुए थे, फिर ये पांव मशीन हुए
लगता है पूरा मानव ही पहुंचेगा लोहार तक"[11]

भारतीय ग़ज़ल के परम्परा पुरूष दुष्यन्त कुमार ने औद्योगिकरण व यन्त्र युग में मनुष्य के जीवन में हुए बदलाव को अभिव्यक्त करते हुए उसकी समस्याओं का चित्रण ग़ज़लों में किया है। मनुष्य मशीनों के साथ काम करने, दिन रात भाग दौड़ करने के कारण स्वयं मशीन हो गया है। वे ग़ज़ल के माध्यम से उसको चेतावनी देते है कि तु मशीन का निर्माता है, तु मशीन नहीं –

"तुझे कसम है खुदी को बहुत हलाक न कर
तु इस मशीन का पुर्जा है, तु मशीन नहीं"[12]

समसामयिक हिन्दी ग़ज़ल में मानवीय जीवन मूल्यों के ह्रास पर गहरी चिंता व्यक्त है। अर्थ को ही भगवान मानने वाले युग में मानवीय मूल्यों का कोई अर्थ नहीं रह गया है। बाजारवादी संस्कृति में मनुष्य से ज्यादा महत्व धन–दौलत का हो गया है। मनुष्य मानवीय मूल्यों को भूलाकर दौलत को ही धर्म मानने लगा है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने मनुष्य के जीवन का वास्तविक अर्थ समझाते हुए बाजारवाद के स्थान पर मानवतावाद की स्थापना का सार्थक प्रयास किया है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने आर्थिक विषमता से उत्पन्न गरीबी, निर्धनता एवं उसके दुष्परिणामों के विषय में चिंतन के नये आयाम स्थापित किए। इस आर्थिक विषमता के कारण निर्धन लोग भौतिक सुखों के लालच में गलत मार्ग पर चल पड़े है। उसके लिए मानवी जीवन मूल्यों का कोई मोल नहीं रहा। ग़ज़लकार ओंकार गुलशन की यह ग़ज़ल इसी मूल्यहीनता को प्रकट करती है–

"कितने ज़िस्मों पे नहीं आज भी कपड़ा कोई
इस समस्या पे तो आयोग न बैठा कोई
चोर बनता नहीं बच्चा तो भला क्या बनता
जब खिलौना नहीं बाज़ार में सस्ता कोई"[13]

वर्तमान युग में मनुष्य से अधिक पैसों का महत्व दिया जा रहा है। बाजारवाद के कारण जहां आम आदमी प्राथमिक सुविधाओं के लिए स्वयं को बेच रहा है वहाँ दूसरी और पूंजीपतियों के महल बनते जा रहे हैं। आम आदमी की स्थिति इतनी दयनीय है कि उसकी झोपड़ी भी बिकने के कगार पर है। देश में भीषण आर्थिक विषमता के कारण इनके जीवन मूल्य बदल गए है। अमीर वर्ग के महलों के सामने गरीब की झोपड़ीं को झुकना पड़ता है। वर्तमान समाज के इस दोहरे रूप को व्यक्त करता हुआ कुंअर बैचेन का यह शेर देखिए–

"जहाँ इंसान की औकात से दौलत बड़ी होगी
महल तनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोपड़ी होगी"[14]

इन्होंने प्रेम जैसे शाश्वत मानवीय मूल्य पर बाजारवाद के प्रभाव को अपनी ग़ज़लों में मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। आज का मनुष्य सामने वाले की हैसियत देखकर बातचीत करता है। उसका प्यार बाजार में बिकने वाली वस्तु के समान हो गया है। इनके अनुसार, मानव प्रेम पूजाघर के समान था लेकिन वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति में वह बाजार बन गया है –

"प्यार पूजाघर था पहले अब तो बस बाज़ार है
जिसको देखो वो ही बिकने के लिए तैयार है"[15]

देश की आर्थिक तंगहाली एवं वर्ग विशेष के ही मालामाल होने की पीड़ा को ग़ज़लकार अदम गोंडवी ने अपनी ग़ज़लों में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। वे कहते है कि आम आदमी गरीबी एवं अर्थाभाव के कारण यातनामय जीवन जी रहा है और उच्च वर्ग मालामाल होकर आनन्दमय जीवन भोग रहा है। इन्होंने अपनी ग़ज़लों में समाज की दोहरी आर्थिक नीति को उजागर किया। वे एक सवाल करते हैं कि आम आदमी इस देश में कब तक कंगाल एवं गरीब बना रहेगा –

"हम रहेंगे कंगाल देश में कब तक
आप होंगे और मालामाल कब तक
जिन्दगी होगी अभी पामाल कब तक
देश का यूँ ही रहेगा हाल कब तक"[16]

इन्होंने देश की आर्थिक विषमता को प्रकट करते हुए व्यक्ति की आमदनी में जमीन–आसमान के अन्तर को अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त किया। इनके अनुसार, देश में किसी व्यक्ति की आमदनी का औसत चवन्नी है तो किसी की लाखों रूपए हैं। मजदूर दिन रात परिश्रम करके सेठों के बंगले चमकाते हैं, उसके हाथ में छाले एवं पैरों में बिवाई हो जाती है लेकिन सेठ उसको नाममात्र का मानदेय देते है। स्पष्ट कहा जाये तो पूंजीपति उसका शोषण करते है। एक दिन की औसत आमदनी के हिसाब से देश में व्याप्त आर्थिक विषमता को प्रकट करती हुए अदम जी की यह ग़ज़ल देखिए –

"वो जिसके हाथ में छाले हैं पैरों में बिवाई है
उसी के दम से रौनक आपने बंगलों में आई है।
इधर इक दिन की आमदनी का औसत है चवन्नी का
उधर लाखों में सेठों के तिजोरी की कमाई है।"[17]

ग़ज़लकार राजेश रेडड़ी ने आर्थिक विषमता की बढ़ती खाई पर गहरी चिंता प्रकट करते हुए गरीबी एवं अर्थाभाव के कारण आम आदमी के जीवन में आने वाली समस्याओं से हमें ग़ज़ल के माध्यम से अवगत कराया। देश का आम आदमी जीवन के अभावों को समाप्त करने के चक्कर में एक दिन स्वयं ही समाप्त हो जाता है। अर्थाभाव के कारण गरीब, मजदूर, किसान आदि लोग अपने परिवार को सुख–सुविधाएं उपलब्ध नहीं करवा पाते है। वे मेले में खिलौने की दुकान के बजाय या उससे बचते हुए अपने बच्चों को इधर–उधर घुमाते है ताकि कहीं वह बच्चा खिलौने की जिद ना कर ले –

"कुछ उम्र जुटाने में तो कुछ जोड़ने गुजरी
बढ़ते ही संसार में घटता ही गया मैं
मेले में थी जिस सिक्त खिलौनें की दुकानें
अस सिक्त से बच्चों को बचाता ही गया मैं।"[18]

इस प्रकार समकालीन ग़ज़लकारों ने मानव जीवन पर आये बाजारवाद, पूंजीवाद एवं औद्योगिकरण के प्रभावों को अभिव्यक्त करते हुए उसके जीवन में खत्म हो रही संवेदनशीलता का यथार्थ चित्रण अपनी ग़ज़लों में किया। आज का मानव यंत्रवत हो गया है। वह दिन रात पैसा कमाने की मशीन बन गया है। इस हिन्दी ग़ज़ल में पूंजी एवं बाजार के कारण जीवन व्यर्थ करने वालो को मनुष्य को कम पैसे एवं संसाधनों में बेहत्तर जीवन की प्रेरणा एवं आशा व्यक्त है।

हम कह सकते है कि समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में देश की आर्थिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, विषमताओं को सटीक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए आर्थिक समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व की नींव पर शोषण रहित समाज के निर्माण पर जोर दिया। इन ग़ज़लों में आर्थिक विषमता, आर्थिक शोषण, महंगाई, बेकारी, बेरोजगारी, गरीबी, जीवन मूल्यों के पतन, अमीर वर्ग के विलासी जीवन, भ्रष्ट व्यवस्था, बाजारवाद, पूंजीवाद के साथ–साथ अर्थाभाव एवं अभावग्रस्त मनुष्य के जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण है। पूंजीवादी एवं यान्त्रिक युग में वर्तमान सामाजिक जीवन की विसंगतियों की वास्तविकता इन ग़ज़लों में व्यक्त है।

REFERENCES

1. दुष्यन्त कुमार : साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–23
2. जहीर कुरैशी : पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–111
3. राजेश रेडड़ी : उड़ान, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–68
4. वहीं : पृष्ठ संख्या–32
5. राजेश रेडड़ी : अनहद, डायमण्ड पॉकेट बुक्स, ओखला इण्डस्ट्रीयल एरिया, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–50
6. ज्ञानप्रकाश विवेक : गुफ्तगु अवाम् से है, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–50
7. नीरज : हिन्दी के लोकप्रिय ग़ज़लकार, हिन्द पॉकेट बुक्स, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–68
8. अदम गोंडवी : समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–40
9. वहीं : पृष्ठ संख्या–59
10. वहीं : पृष्ठ संख्या–79
11. कुंअर बैचेन : आंधियों धीरे चलो, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–86
12. दुष्यन्त कुमार : साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–64
13. रोहिताश्व अस्थाना : हिन्दी ग़ज़ल : उद्भव और विकास, सुनील साहित्य सदन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–178
14. कुंअर बैचेन : आंधियों धीरे चलो, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–92
15. वहीं : पृष्ठ संख्या–56
16. अदम गोंडवी : धरती की सतह पर, किताबघर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–69
17. अदम गोंडवी : समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–64
18. राजेश रेडड़ी : अनहद, डायमण्ड पॉकेट बुक्स, ओखला इंण्डस्ट्रीयल एरिया, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–18